International Journal of Applied Research 2017; 3(6): 848-851

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(6): 848-851
www.allresearchjournal.com
Received: 14-04-2017
Accepted: 17-05-2017

निर्मला
एक्टेंशन लेक्चरर हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय बहादुरगढ़, हरियाणा, भारत।

Correspondence
निर्मला
एक्टेंशन लेक्चरर हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय बहादुरगढ़, हरियाणा, भारत।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में नारी चेतना

निर्मला

सारांश
हर युग में नारी की स्थिति परिवर्तित हुई है। कभी समाज ने उसकी प्रशंसा की है तो कभी उसे दासी समझकर उसकी अवहेलना की है। मनुस्मृति में लिखा है – ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवतः। यत्रे तास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलः क्रिया।'' अर्थात जहां स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में ''स्व'' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। मैत्रेयी पुष्पा नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विविध आयाम दिखाई देते है। स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएँ, संघर्ष, स्वतंत्रता, अधिकार चेतना, स्वालंबन, अस्तित्व और अस्मिता आदि स्त्री चेतना के कई तथ्य सामने आते है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ अपनी अनुभूति पर आधारित है। इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। घटनाओं की सत्यता और पात्रों की सजीवता यह उनके साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में समाज की नारी समस्या, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

मूल शब्दः मैत्रेयी, नारी चेतना, यत्र नार्यस्तु

प्रस्तावना
''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता'' अथार्त जहां नारी की पूजा होती है। वहां देवता निवास करते है। यदि ईश्वर प्रकाश पुंज है, तो नारी उसकी किरण, जो प्रकाश को चारों और बिखेर देती है। यदि ईश्वर शब्द है, तो नारी उसका अर्थ। नारी–पुरूष एक–दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे का अभीष्ट प्राप्त नहीं हो सकता। हिन्दू आदर्श के अनुसार पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है। वह लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा एंव काली आदि रूपों में धन, विद्या, शांति तथा शक्ति का प्रतीक मानी गई है। नारी को करूणामई, ममतामई, वात्सल्यमई जैसे अनेक अलंकारों से विभूषित किया गया है। पहले नारी एवं पुरूष क्रमशः हव्वा व आदम जाति के युग से नारी पुरूष के साथ सहचारिणी का जीवन और सहधर्मिणी का जीवन यापन करती है। नारी और पुरूष दोनों ही रथ के दो पहियों की तरह काम करते है। दोनों के मिलने से ही जीवन की सरंचना संभव है। दोनों ही अपनी जगह कार्यभार संभालते है। दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है लेकिन फिर भी समाज ने अपनी सुविधा अनुसार नारी का शोषण किया तथा नारी को कभी उचित महत्व नहीं दिया। जिस स्त्री को हम देवी स्वरूप मानते हैं, शक्ति स्वरूपणी कहा गया है, उस स्त्री को निर्बल समझकर सहनशील बना दिया जाता है। [1]
साहित्य समाज का दर्पण है। जब वह युगीन यर्थाथ को प्रतिबिम्बित करता है तो उसका लक्ष्य दोहरा होता है। एक युगीन विकृतियों, विसंगतियों और रूगणताओं को विश्लेषण का विषय बनाकर उनके निवारण हेतु समुचित समाधान खजाना। दूसरा अपने अनुभव सत्य से गुजरकर बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु भावी पीढ़ी को दिशा निर्देश करना। [2]

चेतना का अर्थ एवं स्वरूप
नालंदा विश्व कोश के अनुसार – ''चेतना शब्द की उत्पति 'चित् युच अन टाप' के सहयोग से हुई है।'' अर्थात जिसका अर्थ ज्ञानात्मक मनोवृति से समझा जाता है। चेतना को समझने के लिए हमें चेतना के क्रिया व्यापारों को समझना आवश्यक है। हम दैनिक जीवन में जो प्रवृतियाँ करते हैं, उसके मूल में हमारी चेतना रहती है। 'चेतना' मानव में एक ऐसी क्रियाशक्ति है, जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। चेतना का आशय यह है कि किसी भी विषय में सावधानी, होशयारी और सजगतापूर्वक कार्य करना आवश्यक है। चेतना मानव प्राणी में ही संभव है। [3]

चेतना की परिभाषा

रामदरश मिस्त्र के अनुसार – ''चेतना वह तत्व है जिसमें ज्ञान का भाव और व्यक्ति क्रियाशीलता की अनुभूति है। जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं, तो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।'' अर्थात् चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते है। [4]

धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – ''चेतना का अर्थ हम मानव मन की समझाने–बुझाने की शक्ति से, बौद्धिक प्रवणता, प्रवीणता, प्रेरणा अथवा भावना के रूप में प्रयुक्त करते हैं। चेतना का सीधा संबंध मानव की बुद्धि से होता है और मानव प्राणी में ही संभव है।'' चेतना मानव में ही जागृत होती है अर्थात चेतना स्वयं को अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। [5]

हिन्दी साहित्य में नारी चेतना –

हर युग में नारी की स्थिति परिवर्तित हुई है। कभी समाज ने उसकी प्रशंसा की है तो कभी उसे दासी समझकर उसकी अवहेलना की है। अन्य साहित्य की भांति स्त्री साहित्य का आरम्भ कविता से हुआ है। किंतु आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव और अभिव्यक्ति के लिए एक और माध्यम उलब्ध हुआ। कविता की धारा अपनी दिशा में बहुत रही किन्तु लय के माध्यम से स्त्रियों में अपना संघर्ष जारी रखा। भारतीय समाज में स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए प्रयास होने लगे। स्त्री के पाँव हर क्षेत्र में पड़े और इससे यह भ्रम टूटने लगा कि नारी होने मात्र से उसे किसी कार्य को करने से रोका नहीं जा सकता। स्वयं तहिलाओं में यह चेतना जागी है। उन्होंने आत्मसजग होकर व्यक्तित्व को विकसित करने का ध्येय रखा। इन महिला रचनाकारों के संबंध में डॉ० शोभा वेरेकर का कथन है – ''जाहिर है, महिला–लेखन में विलक्षण पठनीयता, विश्वसनीयता, जिजीविका और मार्मिकता के कारण ही इसे विशाल पाठक वर्ग मिला है। आत्म अभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ–साथ आत्म सजगता और परिवेश चेतना महिला कहानीकार के रचनात्मक सरोकार का केन्द्रीय बिन्दु रहा है।'' अर्थात इसी आत्मसजगता और व्यक्तित्व की खोज में बड़ी संख्यां में महिला रचनाकार सामने आई। [6]

स्वातंत्रयोत्तर काल में स्त्री साहित्य ने जीवन के गंभीर विषयों को भी बड़ी सहजता और सामान्य रूप से उठाया है। इस युग की सशक्त लेखिकाओं में शिवानी, उषा पियवंदा, कृष्ण सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, नमिता सिंह, चित्रा मुदूगल, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, कमल कुमार आदि अनेक लेखिकाओं ने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उकेरा है। नारी ने नारी की मन की स्थिति को जिस गहराई से पहचाना है और जिस निपुणता से वह साहित्य में अभिव्यक्ति दे रही है वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। आज नारी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परम्परागत मूल्यों से लड़ रही है। इन लेखिकाओं की नारियाँ ''आँचल में दूध और आँखों में पानी'' लेकर नहीं बढ़ती, बल्कि अधिकांश रचनाओं की नारी अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में नारी चेतना

साठोत्तर काल के नए रचनाकारों की रचना दृष्टि पूर्णतः नवीन है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में परिवारगत संदर्भों में स्त्री–पुरूष के बदलते संबंधों को चित्रित एवं विश्लेषित किया है। वे अपनी रचनाओं में दुर्बल नारी के अतिरिक्त आर्थिक एवं मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने की छटपटाहट को महसूस किया है और अपने स्वावलंबन का परिचय देने वाली नारी का चित्रण भी करती है। उनकी कुछ रचनाओं में नारी स्वतंत्र है कि विवाहित होते हुए भी पर–पुरूष के साथ संबंध स्थापित करने में कोई हिचक नहीं दिखाती। जबकि अधिकांश रचनाओं में उसे भावनाओं और इच्छाओं को प्रकट करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने इर्द–गिर्द का परिसर जो नारी को संदेह की दृष्टि से देखता है, उनके प्रति वह रोष व्यक्ति करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरूषों के सामने स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में 'स्व' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। वह नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी नारी की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है।

स्त्री को अपने यथास्थिति से उभरना जरूरी है, तभी उसका अस्तित्व और अस्मिता बच पायेगी। वह अपनी स्थिति से तब बाहर आयेगी जब उसमें आत्मविश्वास, साहस, अटूट धैर्य तथा भीतरी आत्मनिष्ठा हो। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी तथा 'चाक' की नायिका सारंग इसका प्रतिनिधित्व करने वाली स्त्रियाँ है। मंदाकिनी तथा सारंग यह दो नारियों की कहानियाँ नहीं हैं, यह हमारे पूरे समाज की दो प्रमुख धाराओं के प्रतीक हैं। एक ओर राजनेताओं के अपने पिछवाड़े में प्रतिगामिता, भ्रष्टाचार, हैवानगी और सामंती ऐठ की धारा बह रही है, जिसमें हाथ धोने से कई लाभ हैं किन्तु वहीं दूसरी और गाँवों के क्षुद्रतम तबकों से एक अन्य लहर भी उतनी ही ताकत के साथ उठने लगी है, उपन्यास का प्रतिरोध करने, उसे चुनौती देने और अन्यायी के आगे हथियार न डालने की।

'इदन्नम' उपन्यास की नायिका मंदाकिनी केवल निजी स्तर पर ही संघर्ष नहीं करती बल्कि मजदूरों के हक के लिए बड़े आत्मविश्वास के साथ गाँव के कुछ लोग तथा टीकम सिंह के सहयोग से ठेकेदारों के विरूद्ध एक लंबी लड़ाई का अभियान छेड़ती है। पुरूषों ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए स्त्रियों की शक्ति व बुद्धि पर भरोसा किया। इसलिए बड़े विश्वास के साथ श्यामली गाँव के बुजुर्ग मंदा के हाथ में नेतृत्व की मशाल देकर उसके पीछे–पीछे चलने का विश्वास देते है। आज पुरूष मानसिकता में स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टिकोण तथा सहयोग की भावना विकसित होते हुए हम देख सकते है। द्वारिका कक्का के इस कथन से यह स्पष्ट होता है – ''तें तो आगे–आगे चल बेटा। फिर अनुगामी तो चले आयेंगें स्वतः ही। तेरी गैल ही तो चलना है हमें, कंधे से कंधा मिलाकर, पग के चिन पर पग धरकर।'' [7]

आज की नारी अत्यंत संघर्षशील है। वह सामाजिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। इन प्रयासों में उन्हें कुछ सफलता अवश्य मिली है। फिर भी नारी इन तनावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई है। आरंम्भिक युग में नारी को पढ़ने–लिखने की स्वतंत्रता नहीं थी। अशिक्षित होने की वजह से उसे पुरूषों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आज वह पढ़–लिखकर स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हुई है। नारी चेतना स्त्री को मनुष्य के रूप में स्थापित कर उसे उसके अस्तित्व की पहचान करती है। भारत में स्त्री–विमर्श का आरम्भ 19वीं शदी में महात्मा फुले और राजाराम मोनहराय से माना जाता है। क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम स्त्री को सर्वांगीण उत्थान हेतु अपने कृतिशील कार्य से स्त्री शिक्षा का आरम्भ स्वयं अपने घर में किया है। इसे स्त्री–विमर्श के प्रथम चरण की शुरूआत के रूप में देखा जा सकता है। महात्मा फुले ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में स्त्री और पुरूष दोनों समानाधिकार के धनी है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है – ''स्त्री–पुरूष

जन्मतः स्वतंत्र हैं, अतः दोनों को भी नैसर्गिकतः समान अधिकार उपभोगने की सुविधा होनी चाहिए।'' [8]

स्वतंत्र और मुक्तिकांक्षी नारी

नारी और पुरूष एक–दूसरे के पूरक है, परन्तु इस पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष ने हमेशा ही स्त्री को दासी समझा है। ''सीमोन बोडवा लिखती है – ''पुरूष जान–बूझकर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है न राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज की फुहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया।'' [9] पुरूष ने जब नारी पर शोषण और अत्याचार करना प्रारंभ किया, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों और शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का प्रयास किया। इसी स्वावलंबन ने उसका सर्वांगीण विकार कर, उसे पराधीन तथा अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाने की ताकत दी। मैत्रेयी पुष्पा की बहुत सी रचनाओं को नारी परिवार द्वारा शोषित और पीड़ित होने के बावजूद वह अंत तक संघर्ष करते दिखाई देती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना के अंतर्गत नारियों को अपने उतरदायित्व के प्रति प्रेरित किया है। किशोरियों से लेकर अधेड़ उम्र की महिलाओं तक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग हो उठी है। विवाह के प्रति वर्तमान नारी का दृष्टिकोण बदलने लगा है। अब वह विवाह को बंधन के रूप में स्वीकार न कर, उसकी महता को समझने का प्रयास कर रही है। अब स्त्रियां स्वयं प्रेम–विवाह को अनिवार्य न मानकर गौण मानने लगी है। वे शिक्षा तथा युगबोध से प्रभावित होकर विवाह को जीवन का केन्द्र मानने से अस्वीकार कर रही है। वह विवाह के लिए आत्म निर्णायक बनने लगी है।

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की नारी भले ही गाँव की हैं, किंतु वह अपना जीवन स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। आधुनिक नारी आज नई संकल्पशक्ति के साथ जीने लगी है। समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए नारी को कदम–कदम पर विद्रोह और संघर्ष करना पड़ रहा है। आज की नारी शिक्षित होने के कारण अपने व्यक्तित्व को जानने लगी है। पुरूष की भाँति वह भी समाज में स्वायतता स्थापित करना चाहती है। अपने अधिकारों के प्रति वह सचेत हो चुकी है। निर्मल वर्मा के अनुसार – ''नारी अपने अधिकारों की इच्छा करे, अधिकारी भी बने, अधिकारी के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। अर्थात् इच्छा पूर्ण करने के लिए कृति की आवश्यकता होना जरूरी है। [10]

मैत्रेयी पुष्पा साठोतर हिन्दी कथा साहित्य में उदीयमान होते हुए साहित्य के क्षितिज पर ध्रुव तारों की तरह जगमगाई। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री केन्द्रित है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री स्वयं के लिए स्वतंत्रता के लिए आयाम निर्धारित करती है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दृढ़ता से समाज का सामना करने हेतु सदैव तत्पर रहती है। यही उनकी लेखनी का मूलमंत्र है। मैत्रेयी पुष्पा ने बुराई नहीं की। मैत्रेयी पुष्पा का कहना है – ''जेवर, गहना, बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते है। अब तू मेरी खरीदी हुई।'' [11]

सदियों से स्त्री पुरूषों के द्वारा उतनी शोषित नहीं हुई जितनी प्रताड़ना एक स्त्री ने दूसरी स्त्री को दी है। सही मायनों में एक पुरूष किसी स्त्री की शह पाकर ही दूसरी स्त्री को प्रताड़ित करने की हिम्मत कर पाता है। एक औरत अपने पति के द्वारा मारपीट सहते हुए भी उसके गुण में, कमी नहीं रखती। इसका उदाहरण मैत्रेयी ने अपने उपन्यास ''कही ईसुरी फाग'' में दिया है। बाई अपने स्वर्गीय पति के गुण गाती है – ''ओ विरताप के दादा, तुम ने जनम–जनम सुरग मिले। अपुन 6 महीना अन बोला तो बांधे रहे, अकेले ही हमारी जिंदगानी बखसे रहे। बस–ईतके–सा तसिया की सोच–सोच के जिंदा रहे अपना ही आदमी तो है, जिसका बोझ हम हथेरी पर सहे या करीहाई पर। जनी बच्चा का बोझ भी तो गर्भ में सहती है। जिंदगानी बोझ–वजन के ही हवाले रहनी है, तो आदत डारो।'' [12]

झूलानट उपन्यास की नायिका शीलो कथा के प्रारम्भ में अबला नारी के रूप में सामने आती है। किन्तु धीरे–धीरे उसके व्यक्तित्व में असाधारण परिवर्तन होता है। सर्वप्रथम अपने पति को मनाने के लिए किए गए उपाय असफल होने पर वह निर्णय करती है कि उसे पाने का प्रयास नहीं करेगी – ''क्रोध–क्रोध की ऐसी भंगिमा पहली बार अख्यितार की है उन्होंने। बांह का गंडा तोड़कर फेंक दिया। सरजू की दी हुई शीशियां अम्मा द्वारा मंगाई श्रृंगार सामग्री घर के पनारे पर फोड़ डाली। [13]

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य के अधिकांश पात्र सामान्य तथा बुद्धिजीवी होने के कारण उनकी रचनाओं में साहित्यिक परिवेश की छटा भी दिखाई देती है। साहित्य मैत्रेयी की स्मृति में रचा बसा है। बचपन से लेकर अब तक की साहित्य से जुड़ी हुई घटनाओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में किसी न किसी पात्र के माध्यम से अंकित किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी के कथा साहित्य में सफलतापूर्वक परिवेश का चित्रण हुआ है। रचनाओं में परिवेश के सजीव चित्रण से कथा और पात्र अधिक स्वाभाविक हो उठे है।

निष्कर्ष

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा के समग्र साहित्य में नारी चेतना के विविध आयामों को प्रस्तुत किया। नारी चेतना के विशेष संदर्भ में उनका योगदान असाधारण है। उन्होंने अपने साहित्य में बुंदेलखण्ड की प्रादेशिक बोलियों तथा भाषाओं का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग किया, जिससे वहां के वातावरण का सजीव चित्र पाठक के मस्तिष्क में उपस्थित हो जाता है। भाषा की सरलता और सहजता पाठक को अपनी और आकर्षित करती है। दृश्य, वातावरण और परिस्थितियों को प्रामाणिक धरातल पर प्रस्तुत करने में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान उल्लेखनीय है। प्रेमचंद और रेणु की परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य मैत्रेयी पुष्पा कर रही है। प्रेमचंद के पात्र आदर्शवादी थे, मैत्रेयी पुष्पा के पात्र वास्तववादी है। प्रेमचंद की नारी पुरूष की अनुगामिनी थी। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में वर्णित नारी पुरूष सहगामिनी बनना चाहती है। रेणु की तरह स्वतंत्र रूप में आँचलिक उपन्यास तो नहीं लिखा है, लेकिन ग्रामीण जीवन के उपन्यासों में आँचलिकता का अस्तित्व पाया जाता है। ग्रामीण जीवन का जीवंत चित्र इनके उपन्यासों की बड़ी विशेषता है। पात्रों तथा परिवेश की जीवंतता का मानो चलचित्र का आभास देती है।

संदर्भ

1. मानव विकास रिपोर्टः मौर्य राशि एवं नुपूर कुकरेती द्वारा संकलित एवं ''संपादित सुरक्षा के दायरे'' भाग–1 प्रकाशक (सहयोगिनी ट्रस्ट छतरपुर 1900 आलेखित)।
2. रोहिणी अग्रवाल, 'स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ – 26
3. नवल जी, 'नालंदा विश्व कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ – 138
4. रामदास मिश्र, 'साहित्य संदर्भ और मूल्य', ज्ञानपूर्णा प्रकाशन, जयपुर, 1960, पृष्ठ – 95
5. धीरेन्द्र वर्मा, 'आधुनिक हिन्दी शब्द कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ – 289
6. शोभा वेरेकर, 'नारी विमर्श', अभय प्रकाशन, कानपुर, 2010, पृष्ठ – 85
7. मैत्रेयी पुष्पा, 'इदन्नमम', किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृष्ठ – 197
8. मैत्रेयी पुष्पा, 'गुड़िया भीतर गुड़िया', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ – 195

9. सीमोन बोडवा, 'द सेकंड सेक्स', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृष्ठ – 301
10. निर्मल वर्मा, 'महादेवी एक मूल्यांकन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1969, पृष्ठ – 208
11. मैत्रेयी पुष्पा, 'अल्मा कबूतरी', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृष्ठ – 244
12. मैत्रेयी पुष्पा, 'कहीं ईसुरी फाग', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ – 48
13. मैत्रेयी पुष्पा, 'झूलानट', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृष्ठ – 62